ISSN : 2582-9092

प्रमुख उपनिषदों में नारी : एक विमर्श

डॉ सारिका वार्ष्णेय

उपनिषद् हिन्दू संस्कृति की अमूल्य निधि और कहीं भी किसी भी धर्म या भाषा में न मिलने वाली अतुलनीय अध्यात्म सम्पत्ति है। भारतीय विचारधारा का सर्वोपरि स्वरूप जिसने इसकी समग्र संस्कृति को ओतप्रोत कर रखा है और जिसने इसके सब चिन्तकों को एक विशेष प्रकार का ढाँचा प्रदान किया है, इसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। आध्यात्मिक अनुभव भारत के सम्पन्न सांस्कृतिक इतिहास की आधारभित्ति है।

उपनिषद् ज्ञान के भण्डार हैं और इन्हीं से सारे दर्शन, सब शास्त्र, सब तर्क, अखिल युक्तियाँ, समस्त तन्त्र, सारे पुराण, सम्पूर्ण पदार्थ, विज्ञान और निखिल विद्याएँ निकलकर मानव–जाति को आनन्द और शान्ति की विमल मन्दाकिनी में बहा रही है। समस्त संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है, जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो। वे उच्चतम बुद्धि की उपज है। आगे या पीछे एक दिन ऐसा होना ही है कि यही जनता का धर्म होगा। उपनिषदों का प्रत्येक वचन वह अमर और प्रतापमयी वाणी है, जिसे पढ़कर और जिसके अनुसार आचरण कर कितने ही विद्वान सिद्ध बन गये। कितने ही पुरुष योगी हो गये, कितने ही जीवन्मुक्त और कितने ही ब्रह्मलीन हो गये।

उपनिषद् क्रियात्मक विद्या है, काल्पनिक नहीं। मनुष्य अपने जीवन में उपनिषद्–शिक्षा को व्यावहारिक रूप में लाकर स्वयं निरञ्जन को प्राप्त कर सकता है और समाज को भी उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है। उपनिषदों के उपदेशानुसार मनुष्य षड्रिपुओं से दूर रहकर, शम–दम और साधन–चतुष्ट्य से सम्पन्न होकर स्वयं आत्मज्योति पा लेता है और दिव्य तेज से समाज, देश, जाति को भी उद्भासित कर देता है।

इस प्रकार भारत का साहित्य और शिल्प, विज्ञान और दर्शन, कुल–धर्म, जाति–धर्म और समाज–धर्म, राष्ट्र–नीति, अर्थ नीति, स्वास्थ्य–नीति और व्यवहार–नीति – इन सभी का निर्माण और प्रसार उपनिषद्–ज्ञान को मानव–जीवन के परम आदर्श रूप में मानकर ही हुआ है। अध्यात्म विद्या के पवित्र ग्रन्थ उपनिषदों के मनन करने से हर एक पद से गहरा, नया और उच्च विचार उत्पन्न होता है। भारतीय संस्कृति अब तक जीवन्त है तो इसका कारण है आध्यात्मिकता और इसका त्याग।

इस सभ्यता और संस्कृति के आध्यात्मिक संसार को प्राणमय बनाने वाली हमारी आर्यमाताएँ, आर्य नारियाँ ही है। यदि वेदों में हमें आध्यात्मिक जगत् में मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है, तो उपनिषद् काल में भी गार्गी और मैत्रेयी जैसी महान् विदुषी नारियाँ हैं जिन्होंने शास्त्र–चर्चा से इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अपनी अलग पहचान बनायी है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक लेख में भारतीय नारी की विशेषता में कहा है कि 'पाश्चात्य देशों में भी अनेक पतिभक्ता, सुशीला और साध्वी स्त्रियाँ हो चुकी है, कलाकौशल और भौतिक विद्या में भी वे अग्रसर हो रही है, किन्तु भारतीय नारी में कुछ और ही विशेषता है।' बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार जब याज्ञवल्क्य ऋषि संसार के जीवन में थककर, संसार से विरक्त हो, अरण्य में जाने लगे तो उन्होंने मैत्रेयी से विदा चाही। मैत्रेयी को वैभव, ऐश्वर्य, धन–दौलत देने लगे और मैत्रेयी से कहा कि तुम संसार में रहकर, श्रीमान् जैसा सम्पन्न, शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकोगी। मैत्रेयी ने कहा – येनाहं नामृता स्यां तेनाहं किं कुर्याम्।

ISSN : 2582-9092

क्या मैं इस इस धन–दौलत से अमर हो जाऊँगी? जिससे मुझे अमरता ही प्राप्त न हो, उस वस्तु को लेकर मैं क्या करुँगी? भोगों में शान्ति नहीं है।

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ जी कहते हैं कि मैत्रेयी के इन शब्दों में कितना जीवन, माधुर्य और सत्य भरा हुआ है। क्या ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिल सकता है?

प्रमुख उपनिषदों में से 'नारी' शब्द का प्रयोग बृहदारण्यकोपनिषद् में ही बहुलता से प्राप्त होता है, तथापि नारी–तत्व सर्वत्र ओतप्रोत है। वही नारी तत्व सर्वशक्तिमान् सर्वाधार श्रीसर्वेश्वर प्रभु की शक्ति है जो माया, प्रकृति, अजा, इच्छा, ह्वी, धी, श्री आदि अनेक शब्दों से उपनिषदों में वर्णित हुई है। उपनिषदों में नारी को कहीं अग्नि स्वरूप भी कहा है और किसी श्रुति में उमा आदि नामों से भी संकेत किया है, किन्तु नारी का वास्तविक स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की भिन्न– अभिन्नात्मिका शक्ति ही है। अतएव नर रूप, सर्वाधार सर्वशक्तिमान् श्रीसर्वेश्वर एवं जगत् की उत्पत्ति–स्थिति–लयकारिणी नारीरूपा भगवती श्रीसर्वेश्वरी–इन दोनों की मनमोहिनी नित्यविहार विहारिणी सदा सर्वदा से ही अटल है। भारतीय संस्कृति के उपासक सन्त–महात्माओं के विचार हैं कि नारी नर के लिए अनुपम सहकारिणी है, क्योंकि यदि नर जीवरूप से विचरण करता है तो नारी बुद्धि बनकर सहयोग देती है। यदि नर दिन बनकर श्रम द्वारा तपता है तो नारी रात्रि बनकर उसके श्रम को हरती है। यदि नर इन्द्र बनकर जलवृष्टि करता है तो नारी पृथ्वी बनकर उस जल से प्राणियों का पोषण करती है। नर यदि दाता है तो नारी पालिका है। नर यदि नारायण बनकर अगाध जलराशि में भयंकर शेष–शय्या बना चरण चाँपती है। नर यदि क्रोध है तो नारी शान्ति है। नर यदि नद है तो नारी नदी है। नर यदि भर्ता तो नारी भार्या है। नर यदि गृहपति है तो नारी गृहलक्ष्मी है। नर यदि वेत्ता है तो नारी विद्या है। नर यदि कर्ता है तो नारी क्रिया है।

जैसे नर–नारी की संज्ञा अन्योन्यापेक्ष है, वैसे ही नर–नारी के अंग–उपांग आकृति–प्रकृति, कार्य–करण सब कुछ परस्परसापेक्ष है। नर–नारी द्वारा लोक–संचालन की प्रक्रिया उपनिषदों में बतलायी गयी है। उपनिषदों में इस सारे संसार को यज्ञशाला माना है। नर को होता माना है और नारी को अग्नि माना है। जैसे होता समस्त सामग्रियों का संचय करके अग्नि में आहुतियाँ प्रदान करते हैं और अग्नि उन आहुतियों के स्थूलांशों को भस्म करके शुद्ध दिव्यांशों को होता के उद्देश्यानुसार तत्तद्देवों की सन्निधि में पहुंचा देता है, वैसे ही नारी भी नरो के पाप–पुण्यात्मक सभी प्रकार के भले–बुरे कर्मो द्वारा अर्जित किए हुए द्रव्य–रसादिकों को यथोचित स्थानों में सुरक्षित रखकर यथोचित रूप से विभक्त कर देती है। अतएव नर संचायक है और नारी विभाजक है। इन्हीं दोनों के अवलम्ब पर सारा संसार स्थित है।

वैज्ञानिक क्षेत्र में वैदिक मुनिपत्नियों और ब्रह्मवादिनी देवियों की ज्ञान–परम्परा और दर्जनों ऋषिकल्प मन्त्राविष्कारिणी मुनि–कन्याओं की अलौकिक प्रतिभा आज भी तत्वज्ञों और मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में भारतीय नारी की विचारधारा और कल्पना–सृष्टि में जीवित है। मैत्रेयी और गार्गी भी उसी भारतीय ऋषिकाओं की गौरवमयी परम्परा में ज्ञान–ज्योति के दीपक जलाए हुए आज भी जीवन्त है।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियाँ थीं – मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी, किन्तु कात्यायनी की बुद्धि साधारण स्त्रियों की सी ही थी। मैत्रेयी ज्येष्ठ पत्नी थी और कात्यायनी छोटी। याज्ञवल्क्य के सत्संग से मैत्रेयी में किस प्रकार आध्यात्मिक रुचि और बल का उदय हुआ था – बृहदारण्यक उपनिषद् की यह आख्यायिका अध्ययन करने योग्य है।

ISSN : 2582-9092

एक दिन याज्ञवल्क्य ने अपनी दोनों पत्नियों को अपने पास बुलाया और मैत्रेयी को सम्बोधित करके कहा – 'मेरा विचार अब सन्यास लेने का है, अतः इस स्थान को छोड़कर मैं अन्यत्र चला जाऊँगा, इसीलिए तुम लोगों की अनुमति लेना आवश्यक है, साथ ही यह भी चाहता हूँ कि घर में जो कुछ धन–दौलत है, उसे तुम दोनों को बराबर–बराबर बाँट दूँ, जिससे मेरे चले जाने के बाद तुम में परस्पर विवाद न हो।'

यह सुनकर कात्यायनी तो चुप रही, किन्तु मैत्रेयी ने कहा, 'भगवान्, यदि यह धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी केवल मेरे अधिकार में आ जाए तो क्या मैं उससे किसी प्रकार अमर हो सकती हूँ –

सा होवाच मैत्रेयी। यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति...

याज्ञवल्क्य ने कहा – 'नहीं भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा भी जीवन हो जाएगा। धन में अमृतत्व की तो आशा है ही नहीं।'

मैत्रेयी ने कहा, 'जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उन भोगों को लेकर क्या करुँगी? यदि धनसे वास्तविक सुख मिलता तो आप इसे छोड़कर क्यों जाते? आप ऐसी कोई वस्तु अवश्य जानते है, जिसके सामने यह धन, यह गृहस्थी का सारा सुख तुच्छ प्रतीत होता है। अतः मैं उसी को जानना चाहती हँ। केवल जिस वस्तु को श्रीमान् अमृतत्व का साधन जानते हैं, उसी का मुझे उपदेश करें –

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।
यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि।।

मैत्रेयी की यह जिज्ञासा पूर्ण बात सुनकर याज्ञवल्क्य को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा – 'धन्य मैत्रेयी! धन्य! तुम पहले भी मुझे बहुत प्रिय थीं और इस समय भी तुम्हारे मुख से प्रिय वचन ही निकला है। अतः आओ, मेरे समीप बैठो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। तुम सुनकर मनन और निदिध्यासन करो। मैं जो कुछ कहूँ, उस पर स्वयं भी विचार करके उसे हृदय में धारण करो –

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस
एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति।।

ऐसा कहकर महर्षि याज्ञवल्क्य ने उपदेश आरम्भ किया – मैत्रेयी तुम जानती हो स्त्री को पति और पति को स्त्री क्यों प्रिय है? इस रहस्य पर कभी विचार किया है? पति इसलिए प्रिय नहीं है कि वह पति है, बल्कि इसलिए प्रिय है कि वह अपने को सन्तोष देता है, अपने काम आता है। इसी प्रकार पति को स्त्री भी इसलिए प्रिय नही होती कि वह स्त्री है, अपितु इसलिए प्रिय होती है कि उससे आत्मा को सुख मिलता है। इसी प्रकार पुत्रों के प्रयोजन के लिये धन प्रिय होता है। इसी न्यास से ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देवता, समस्त प्राणी अथवा संसार के सम्पूर्ण पदार्थ भी आत्मा के लिए प्रिय होने से ही प्रिय जान पड़ते हैं, अतः सबसे बढ़कर प्रियतम वस्तु क्या है, अपनी आत्मा। इसलिए –

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन
श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

मैत्रेयी! तुम्हें आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए उसी के दर्शन, श्रवण, मनन और यथार्थज्ञान से सब कुछ ज्ञात हो जाता है। तदनन्तर महर्षि याज्ञवल्क्य ने भिन्न–भिन्न अनेकों दृष्टान्तों और युक्तियों से ब्रह्मज्ञान का यथार्थ उपदेश दिया। वह कहते हैं –

ISSN : 2582-9092

जिस प्रकार बजती हुई दुन्दभि के बाह्य शब्दों को कोई पकड़ नहीं सकता, किन्तु दुन्दभि के आघात या दुन्दभि को पकड़ लेने से उसका शब्द भी पकड़ लिया जाता है। इसी प्रकार शंख और वीणा का भी दृष्टान्त दिया है कि जैसे बजाये हुए शंख और वीणा के बाह्य शब्दों को ग्रहण करने से समर्थ नहीं होता, किन्तु शंख और शंख के बजाने से, वीणा और या वीणा के स्वर ग्रहण करने पर उस शब्द का भी ग्रहण हो जाता है।

जिस प्रकार जिसका ईधन गीला है, ऐसा आधान किये हुए अग्नि से पृथक् धुआँ निकलता है। हे मैत्रेयि,! इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद है, वे सब इस महद्भूत परमात्मा के ही निःश्वास हैं।

जिस प्रकार समस्त जलों का समुद्र एक आयन (आश्रय–स्थान) है, इसी प्रकार समस्त स्पर्शों का त्वचा एक अयन है, समस्त गन्धों का दोनों नासिकाएँ एक अयन है, समस्त रसों का जिह्वा एक अयन है, समस्त रूपों का चक्षु एक अयन है, समस्त शब्दों का श्रोत्र एक अयन है, समस्त संकल्पों का एक अयन है, समस्त विद्याओं का हृदय एक अयन है, समस्त कर्मों का हस्त एक अयन है, समस्त आनन्दों का उपस्थ एक अयन है, समस्त विसर्गों का पायु एक अयन है, इसी प्रकार समस्त वेदों का वाणी एक अयन है।

जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक का डला जल में घुल–मिल जाता है, उसे जल से निकालने में कोई समर्थ नहीं होता तथा जहाँ–जहाँ से भी जल लिया जाये वह नमकीन ही जान पड़ता है। हे मैत्रेयि! इसी प्रकार परमात्मा तत्व अनन्त, अपार और विज्ञान घन ही है। यह इन भूतों से प्रकट होकर उन्हीं के साथ अदृश्य हो जाता है, देहेन्द्रिय भाव से मुक्त होने पर इसकी कोई विशेष संज्ञा नहीं रहती। हे मैत्रेयि! ऐसा मैं तुझसे कहता हूँ – ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा।

मैत्रेयी ने कहा – 'शरीरपात के अनन्तर कोई संज्ञा नहीं रहती – ऐसा कहकर ही श्रीमान् ने मुझे मोह में डाल दिया है –

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवानमूमुहन्न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीति।

याज्ञवल्क्य ने कहा – 'हे मैत्रेयि! मैं मोह का उपदेश नहीं कर रहा हूँ, यह तो उस परमात्मा का विज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है।

जहाँ द्वैत सा होता है, वहीं अन्य को अन्य को सूंघता है, अन्य अन्य को देखता है, अन्य अन्य को सुनता है, अन्य अन्य का अभिवादन करता है, अन्य अन्य का मनन करता है तथा अन्य अन्य को जानता है, किन्तु जहाँ इसके लिए सब आत्मा ही हो गया है, वहाँ किसके द्वारा किसे सूँघे, किसके द्वारा किसे देखे, किसके द्वारा किसे सुने, किसके द्वारा किसका अभिवादन करे, किसके द्वारा किसका मनन करे। मैत्रेयि, विज्ञाता को किसके द्वारा जाने?

यही है 'बृहदारण्यकोपनिषद्' का याज्ञवल्क्य – मैत्रेयी संवाद। यह पति–पत्नी संवाद एक प्राचीनतम आर्यनारी के हृदय का, उसकी विरक्ति एवं जिज्ञासा का जीता–जागता नमूना है और महर्षि याज्ञवल्क्य के सत्संग का प्रसाद है। महर्षि ने मैत्रेयी को इस उपदेश का अधिकारिणी समझा, तभी तो यह उपदेश दिया। इस दृष्टान्त से मैत्रेयी के विदूषत्व, शैक्षिक चेतना का प्रमाण मिलता है। त्याग एवं वैराग्य की शिक्षा मिलती है। जिसकी अविरल धारा का प्रवाह आज भी निरन्तर अबाध गति से बह रहा है। यही मैत्रेयी की आध्यात्मिक चेतना है। यह अमर उपदेश सर्वप्रथम मैत्रेयी के त्याग और वैराग्य से प्रकट हुआ था।

ISSN : 2582-9092

वैदिक साहित्य जगत् में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम वचक्नु था, उनकी पुत्री होने के कारण इनका नाम 'वाचक्नवी' पड़ गया। किन्तु असली नाम क्या था, इसका वर्णन नहीं मिलता। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने से इन्हें 'गार्गी' भी कहा जाता था, यही नाम जन–साधारण में अधिक प्रचलित था। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में गार्गी के शास्त्रार्थ का प्रसंग है, जो इनके वैदुष्य का परिचायक है –

विदेह देश में रहने वाले राजा जनक ने एक बड़ी दणिक्षा वाले यज्ञ के द्वारा यजन किया। उसमें कुरु और पाञ्चाल देशों के ब्राह्मण एकत्रित हुए। राजा जनक विद्या व्यसनी और सत्संगी थे। उन्हें शास्त्र के गूढ़ तत्वों का विवेचन और परमार्थ चर्चा अधिक प्रिय थी। इसलिए राजा जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि इन ब्राह्मणों में सबसे बढ़कर तात्विक विवेचन करने वाला कौन है? इस परीक्षा के लिए उन्होंने अपनी गोशाला में एक सहस्र गौएँ बँधवा दीं। उनमें से प्रत्येक के सींगों में दस–दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे।

राजा जनक ने कहा – पूज्य ब्राह्मणगण, आपमें जो ब्रह्मनिष्ठा हो, वह इन गौओं को ले जाये'। किन्तु उन ब्राह्मणों में से किसी में यह साहस नहीं हुआ कि उन गौओं को ले जाए। सबको अपने ब्रह्मवेत्तापन में सन्देह हुआ। सब सोचने लगे कि 'यदि हम गौएँ ले जाने को आगे बढ़ते हैं तो ये सभी ब्राह्मण हमें अभिमानी समझेंगे और शास्त्रार्थ करने लगेंगे, उस समय हम इन सबको जीत सकेंगे या नहीं, इसका क्या निश्चय है, यह विचार करते हुए सब चुपचाप ही रहे। सबको मौन देखकर याज्ञवल्क्य ने अपने ही ब्रह्मचारी से जो सामवेद का अध्ययन करने वाला था कहा, 'हे सौम्य सामश्रवा! तू इन्हें ले जा', ब्रह्मचारी ने वैसा ही किया।

यह देख ब्राह्मणलोग क्षुब्ध हो उठे। विदेहराज का होता अश्वल याज्ञवल्क्य से पूछ बैठा – क्यों? तुम्हीं हम सबमें बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो? याज्ञवल्क्य ने नम्रता से कहा – नहीं, ब्रह्मवेत्ताओं को तो हम नमस्कार करते हैं, हमें केवल गौओं की आवश्यकता है, अतः ले जाते हैं।' फिर क्या था, शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। यज्ञ का प्रत्येक सदस्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछने लगा। याज्ञवल्क्य इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने धैर्यपूर्वक सबसे प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ किया। अश्वल ने चुन चुनकर कितने ही प्रश्न किए, किन्तु उचित उत्तर पा जाने के कारण चुप होकर बैठ गये। तब जरत्कारु गोत्र में उत्पन्न आर्तभाग ने प्रश्न किया, उनको यथार्थ उत्तर मिल गया, अतः वे भी मौन हो गये। फिर क्रमशः लाह्यायनि भुज्यु, चाक्रायण उषस्त और कोषीतकेय कहोल प्रश्न करके चुप बैठ गये।13

इसके पश्चात् याज्ञवल्क्य से वचक्नु की पुत्री गार्गी ने पूछा – याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ है, सब जल में ओत–प्रोत है, किन्तु वह जल किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य – ऐ गार्गि – वायु में।' गार्गी – वायु किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! अन्तरिक्षलोकों में। गार्गी – अन्तरिक्षलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! गन्धर्वलोकों में। गार्गी – गन्धर्वलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि, आदित्यलोकों में। गार्गी – आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! चन्द्रलोकों में। गार्गी – चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! नक्षत्रलोगों में। गार्गी – नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! देवलोकों में। गार्गी – देवलोक किसमें ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! प्रजापतिलोकों में। गार्गी – प्रजापतिलोक किसमें ओतप्रोत हैं? याज्ञवल्क्य – हे गार्गि! ब्रह्मलोकों में। गार्गी – ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत हैं? इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा – हे गार्गि! यह तो अति प्रश्न है। यह उत्तर की सीमा है, अब इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। वाचक्नवी विदुषी थी, उसने याज्ञवल्क्य के अभिप्राय को समझ लिया और चुप रही।

ISSN : 2582-9092

इसी उपनिषद् के तृतीय अध्याय के अष्टम ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद की पुनः चर्चा है। गार्गी ने कहा कि 'पूजनीय ब्राह्मणगण, अब मैं इनसे दो प्रश्न पूछूँगी। यदि ये मेरे उन प्रश्नों का उत्तर दे देंगे तो फिर आप में से कोई भी इन्हें ब्रह्मसम्बन्धी वाद में जीत नहीं सकेगा।

वह बोली – 'याज्ञवल्क्य, जिस प्रकार काशी या विदेह का रहने वाला कोई वीर–वंशज पुरुष प्रत्यञ्चाहीन धनुष पर प्रज्यञ्चा चढ़ाकर शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ा देने वाले दो फलवाले शर हाथ में लेकर खड़ा होता है, उसी प्रकार मैं दो प्रश्न लेकर तुम्हारे सामने उपस्थित होती हूँ, तुम मुझे उनका उत्तर दो

''सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृवा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति।''

इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा – 'गार्गि! पूछ'।

वह बोली 'याज्ञवल्क्य, जो द्युलोक के ऊपर है, पृथ्वी से नीचे है और जो द्युलोक और पृथिवी के मध्यम में है और स्वयं भी जो ये द्युलोक और पृथिवी हैं तथा जिन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य – इस प्रकार कहते हैं, वे किसमें ओतप्रोत हैं?

याज्ञवल्क्य ने संक्षेप में उत्तर दिया – 'आकाश में'।

गार्गी बोली – 'याज्ञवल्क्य, आपको नमस्कार है, जिन्होंने मुझे इस प्रश्न का उत्तर दे दिया, अब आप दूसरे प्रश्न के लिए तैयार हो जाइये।''

याज्ञवल्क्य ने कहा – गार्गि! पूछ।

गार्गी ने कहा – यह आकाश किसमें ओतप्रोत है।

याज्ञवल्क्य ने कहा – गार्गि, उस इस तत्व को तो ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते हैं। निषेधावधिरूप से उसका वर्णन करते हैं। यह न स्थूल है, न सूक्ष्म, न छोटा न बड़ा, न लाल है, न द्रव्य है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश, न संगवान् है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमें न भीतर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई भी नहीं खाता।

गार्गि! इस अक्षर के प्रशासन में सूर्य और चन्द्रमा, द्युलोक और पृथिवी, निमेष, मुहूर्त, दिन–रात, अर्धमास (पक्ष), मास, ऋतु और संवत्सर विशेष रूप से धारण किए स्थिर रहते हैं। हे गार्गि! इस अक्षर के ही प्रशासन में पूर्व वाहिनी नदियाँ एवं अन्य नदियाँ श्वेत पर्वतों से बहती हैं तथा अन्य पश्चिमवाहिनी नदियाँ जिस–जिस दिशा को बहने लगती हैं, उसी का अनुसरण करती रहती हैं। हे गार्गि, इस अक्षर के ही प्रशासन में मनुष्य दाता की प्रशंसा करते हैं तथा देवगण यजमान का और पितृगण दर्वीहोम का अनुवर्तन करते हैं। गार्गि! जो कोई इस लोक में इस अक्षर को न जानकर हवन करता, यज्ञ करता और अनेकों सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करता है, उसका वह कर्म अन्तवाला ही होता है। जो कोई भी इस अक्षर को जाने बिना इस लोक से मरकर जाता है, वह कृपण है और जो इस अक्षर को जानकर इस लोक से मरकर जाता है, वह ब्राह्मण है। यह अक्षर स्वयं वृष्टि का विषय नहीं, किन्तु द्रष्टा है, श्रवण का विषय नहीं, किन्तु श्रोता है, मनन का विषय नहीं, किन्तु मन्ता है, स्वयं अविज्ञात रहकर दूसरों का विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, कोई श्रोता नहीं है, कोई मन्ता नहीं है, कोई विज्ञाता नहीं है। हे गार्गि! निश्चय ही इस अक्षर में ही आकाश ओतप्रोत है।

ISSN : 2582-9092

अन्त में गार्गी ने कहा कि इस सभा में याज्ञवल्क्य से बढ़कर कोई ब्रह्मवेत्ता नहीं है। इनको कोई पराजित नहीं कर सकता। ब्राह्मण आप लोग इसी को बहुत समझें कि याज्ञवल्क्य को नमस्कार करने मात्र से आपका छुटकारा हो रहा है। इन्हें पराजित करने का स्वप्न देखना व्यर्थ है। यह कहकर गार्गी चुप हो गयीं।

''सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपरराम।''

गार्गी के प्रश्नों को पढ़कर उनके गम्भीर अध्ययन और वैदुष्य का पता चलता है। इतने पर भी उनके मन में अपने पक्ष को अनुचित रूप से सिद्ध करने का दुराग्रह नहीं था। गार्गी विद्वत्तापूर्ण उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो गयी और याज्ञवल्क्य की विद्वता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। भारतवर्ष की नारियों में गार्गी रत्न थीं। आज भी उनकी जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियों पर देश एवं साहित्य को गर्व है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रमुख उपनिष्दों में से भले ही एक बृहदारण्यक उपनिषद् में ही नारी की प्रत्यक्ष उपस्थिति प्राप्त होती है किन्तु उनकी उपस्थिति इतनी प्रबल रूप से होती है कि नारी की तत्कालीन स्थिति सहजता से ही स्पष्ट हो जाती है।

सन्दर्भ सूची

1. बृहदारण्यकोपनिषद्, द्वितीय अध्याय, ब्राह्मण 4, मन्त्र 3
2. वही, ब्राह्मण 4
3. वही, मन्त्र 2
4. वही, मन्त्र 3
5. वही, मन्त्र 4
6. वही, मन्त्र 5
7. वही, मन्त्र 7 – 9
8. वही, मन्त्र 10
9. वही, मन्त्र 11
10. वही, मन्त्र 12
11. वही, मन्त्र 13
12 वही, मन्त्र 14
13. बृहदारण्यकोपनिषद्, तृतीय अध्याय, प्रथम ब्राह्मण से लेकर पंचम ब्राह्मण
14. वही, तृतीय अध्याय षष्ठ ब्राह्मण मन्त्र 1
15. वही, अष्टम ब्राह्मण मन्त्र 2
16. वही, मन्त्र 6
17. वही, मन्त्र 8
18. वही, मन्त्र 9 – 11
19. वही, मन्त्र 12

एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
वीमेन्स कॉलेज, अ.मु.वि., अलीगढ़ (उ.प्र.)